जल में जहर आर्सेनिक का कहर

सुभाष लखेड़ा
नई दिल्ली

आर्सेनिक तत्व को वैज्ञानिक दृष्टि से सीधे तौर पर जहर नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इस संबंध में अब तक हुए शोध कार्यों से यही संकेत मिले हैं कि इसकी अत्यल्प मात्रा पोषण की दृष्टि से मनुष्य के लिए जरूरी है। स्वास्थ्य की दृष्टि से हमारे लिए प्रतिदिन बारह माइक्रोग्राम आर्सेनिक तत्व पर्याप्त हैं।

बहरहाल जब किसी वजह से हमारे शरीर में आवश्यकता से अधिक आर्सेनिक जमा होने लगता है तो एक सीमा के बाद हम उसकी विषाक्तता का शिकार बनने लगते हैं। आर्सेनिक विशाक्तता के लक्षणों में त्वचा पर घाव, नेत्र श्लेष्मलाशोथ (कन्जंक्टिवाइटिस), त्वचा कैंसर और गैंग्रीन प्रमुख हैं। इससे पीड़ित व्यक्ति को कई बार लोग भ्रमवश कुष्ठ रोगी समझने लगते हैं। आर्सेनिक विशाक्तता का असर जब शरीर के अंदरूनी अंगों तक फैल जाता है तो ऐसा व्यक्ति देर–सबेर मौत का शिकार बन जाता है।

दरअसल, कोई भी व्यक्ति आर्सेनिक विशाक्तता की चपेट में तभी आता है जब किसी वजह से यह तत्व उसके शरीर में इतनी अधिक मात्रा में पहुंचने लगता है कि शरीर उसकी अनावश्यक मात्रा को बाहर नहीं निकाल पाता है। आर्सेनिक तत्व पेयजल के साथ भी हमारे शरीर में पहुंच सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पहले एक लीटर पेय जल में इसकी उच्चतम सुरक्षित सीमा पचास मिलीग्राम तय की थी किन्तु जब इस सदी के सातवें दशक में ताइवान में इसकी विशाक्तता से लगभग बीस हजार लोग पीड़ित हुए तो इस उच्चतम सुरक्षित सीमा को उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर घटाकर दस मिलीग्राम प्रति लीटर कर दिया गया।

जादवपुर विश्वविद्यालय में सेवारत वैज्ञानिक डा. दीपांकर चक्रवर्ती के अनुसार इस समय पश्चिमी बंगाल के उस भू–भाग में जो बंगलादेश की सीमा से सटा है, करीब दो लाख लोग आर्सेनिक विशाक्तता के दुष्परिणामों से पीड़ित हैं। डा. चक्रवर्ती और उनके साथियों द्वारा पिछले कुछ वर्षों में किए गये अध्ययनों और व्यापक सर्वेक्षणों से मालूम हुआ है कि 31,000 वर्ग किलोमीटर में फैले इस क्षेत्र के निवासी खाने–पीने के लिए जिस जल को उपयोग में लाते हैं। उसमें आर्सेनिक तत्व की मात्रा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित उच्चतम सुरक्षित सीमा से औसतन बीस से लेकर सत्तर गुना अधिक है। कहीं, कहीं तो यह दो सौ गुना भी है।

उपरोक्त संदर्भ में सवाल यह उठता है कि इस क्षेत्र के निवासियों द्वारा उपयोग किये जाने वाले जल में इतना अधिक आर्सेनिक क्यों है ? इस सवाल का जवाब थोड़ा लंबा जरूर है पर यह बताने के लिए उपयुक्त उदाहरण है कि विकास के लिए किये जाने वाले कार्य विनाशकारी भी साबित हो सकते हैं। आज से लगभग तीस वर्ष पहले तक पश्चिमी बंगाल के इन जिलों में जिनमें मुर्शिदाबाद, माल्दा और नदियाँ प्रमुख हैं, पानी की कमी के कारण किसान वर्ष भर में केवल वर्षा ऋतु के दौरान ही धान की एक फसल बोते थे। वर्ष के शेष शुष्क महीनों के दौरान वे अपनी कृषि भूमि का उपयोग नहीं कर पाते थे। इस समस्या के स्थायी समाधान के लिए सिंचाई विभाग के इंजीनियरों ने इस क्षेत्र में बहुत गहराई में उपलब्ध भूमिगत जल को उपयोग में लाने की योजना बनायी। फलस्वरूप, इस योजना के क्रियान्वयन हेतु इस संपूर्ण क्षेत्र में चट्टानों को बेध कर गहराई से पानी खींचने के लिए हजारों नलकूप लगाये गये। देखते–देखते इस संपूर्ण क्षेत्र में 'हरित क्रांति' हो गयी यहां के किसान प्रति वर्ष एक के बजाए धान की तीन, चार फसलें बोने–काटने लगे।

भूमिगत जल के उपयोग से सम्पन्न 'हरित क्रांति' का आनंद अल्पकालिक साबित हुआ। यह जल धान के पौधों को तो रास आ गया किन्तु इसे खाने–पीने के लिए इस्तेमाल करने वाले लोग समय बीतने के साथ–साथ विभिन्न शारीरिक व्याधियों का शिकार होने लगे। आज से कोई बारह वर्ष पहले कलकत्ता स्थित 'स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन' के वैज्ञानिकों ने सर्वप्रथम इस 'विशाक्तता' की खोज की। डा. दीपांकर चक्रवर्ती और उनके चंद सहयोगियों ने अपना समस्त समय इस समस्या को समझने में लगाया है। अपने अध्ययन के तहत वे इस समय तक साढ़े चार सौ गांवों में सात हजार से अधिक नलकूपों द्वारा खींचे जाने वाले जल के नमूनों को जांच चुके हैं।

अध्ययनों से पता चला है कि इस क्षेत्र की भूमिगत चट्टानों में आर्सेनिक लवण मौजूद हैं। सामान्य रूप से ये लवण पानी में नहीं घुलते हैं किन्तु यदि किसी वजह से ये लवण हवा के संपर्क में आ जाते हैं तो हवा में मौजूद आक्सीजन इनमें से आर्सेनिक को मुक्त कर देती है। इस प्रकार इन लवणों से मुक्त यह आर्सेनिक जल में घुल कर उसे विशाक्त बना देता है।

इससे छुटकारे के लिए सर्वप्रथम स्थानीय लोगों को खाने–पीने के लिए सतही जल स्रोतों अथवा केवल उन नलकूपों का जल उपयोग में लाना होगा जिनमें आर्सेनिक की मात्रा सुरक्षित सीमा के अंदर हो। इसके अलावा किसानों को नलकूपों से निकाले जाने वाले जल की मात्रा को कम करना होगा ताकि भूमिगत जल का स्तर पर्याप्त ऊंचा रहे और वहां मौजूद चट्टानों में हवा का प्रवेश न हो। इसके लिए किसानों को शुष्क मौसम में गेहूं की खेती करनी होगी ताकि पानी की अधिक जरूरत ही न पड़े। वर्षा ऋतु के दौरान कृत्रिम जलाशय और तालाबों में वर्षा का पानी इकट्ठा करके भी खेती के लिए अतिरिक्त जल की व्यवस्था करनी होगी। यदि समय रहते इस तरह की व्यवस्थाएं न की गयी तो आर्सेनिक विशाक्तता से अभिशप्त इस क्षेत्र के लोग उस भूमिगत जल को पीकर असमय मौत का शिकार होते रहेंगे जिसे शुरूआती दिनों में स्थानीय लोगों ने 'शैतानेर जल' नाम दिया था। कितना सही था यह नाम–आज सभी को मालूम हो चुका है।

एक दिन हिंदी एशिया की नहीं, विश्व की पंचायत में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

गणेश शंकर विद्यार्थी